प्रवचन नं.-२ श्लोक-१-२ ता. ८-६-७८ गुरुवार, जेठ सुद-३ सं. २५०४

पहले कलश का भावार्थ। इस कलश में इष्टदेव को नमस्कार किया है, परंतु स्वयं अपने आत्मा का अनुभव किया है। यहाँ इष्टदेव को नमस्कार करके शुरूआत की है, क्या कहा ? समझ में आया। अपना आत्मा शुद्धचैतन्य (स्वरूप) द्रव्यकर्म, भावकर्म नोकर्म रहित, अंदर से अनुभवा है, जाना है। यह जीव... पूर्णइष्ट देव को नमस्कार किया है सर्वभावांतरच्छिदे है ना ? सर्वज्ञ परमात्मा... किसी का नाम नहीं लिया, इष्टदेव अर्थात् जिनकी पूर्णदशा प्रगट हो गई है, स्वानुभव से जिन्होंने सर्वज्ञपना प्रगट किया है, उनके भावाय और चित्स्वभावाय द्रव्य और गुण है, ऐसे जीव का। पूरणदशा प्राप्त को, इष्टदेव गिनकर, अपने इष्टदेव का अनुभव करके, इष्टदेव को नमस्कार करते है।

इसका भावार्थ :- **यहां मंगल के लिये शुद्धआत्मा को नमस्कार किया है। यदि कोई यह प्रश्न करे किसी इष्ट देव का नाम लेकर** (**नमस्कार**) **क्यों नहीं किया ?** कोई महावीर कि ऋषभदेव भगवान कि कोई और **तो उसका समाधान :- वास्तव में इष्टदेव का सामान्य स्वरूप,** `जिन्हें दिव्यशक्ति पूर्णप्रगटी है, ऐसे इष्टदेव का सामान्य तरह से (यह वस्तु का स्वरूप)' सर्वज्ञ है, सर्वकर्मरहित है इष्टदेव का स्वरूप सर्वकर्म रहित है। पहले सहित थे, बाद में रहित हुये, अर्थात इस प्रकार जिन्हें सर्वज्ञ, वर्तमान दशामें जिन्हें सवर्ज्ञता प्रगट हुयी है। सर्वज्ञ स्वभाव तो था वस्तु स्वयं सर्वज्ञ स्वभावी ही है, आत्मा सर्वज्ञ स्वरूपी, सर्वज्ञ स्वभावी त्रिकाल है, परंतु जिन्होंने, आत्मा का अनुभव करके उसमें से सर्वज्ञदशा प्रगट की उन्हें नमस्कार करते है, समझ में आया ?

वीतराग, वीतराग हुये हैं, वीतरागस्वरूप तो थे, सभी आत्मायें वीतरागस्वरूप ही हैं, जिनस्वरूप ही है, परंतु जिसको वीतरागता पर्याय में प्रगट हुयी वह, जिसे पर्याय में आत्म द्रव्य का अनुभव हुआ वह, पूरण पर्याय जिसे प्रगट हुयी वीतरागता, उन्हें नमस्कार करते हैं। वीतराग शुद्धआत्मा ही है। सर्व कर्म रहित वीतराग, सर्वज्ञ और वह शुद्धात्मा ही है अर्थात `ज्ञ' और चारित्र दोनों ले लिए, सर्वज्ञपना और वीतराग अर्थात् चारित्र (की) पूर्णता दो वस्तु।

`इसलिये इस अध्यात्म ग्रंथ में `समयसार' कहने से इसमें इष्टदेव का समावेश हो गया।' समयसार को नमस्कार किया इसमें इष्टदेव आ गये। `नमः समयसाराय' - ऐसा आया ना ? इस समयसार में इष्ट देव आगये। प्रगट रूप पर्याय जिसकी है, वह इष्टदेव आ गये। और जिन्होंने नमूना जाना है, सर्वज्ञ पर्याय की उसमें प्रतीति हुयी है, सर्वज्ञ का अंश मतिश्रुतज्ञान प्रगटा है, वीतराग अंश जिसे प्रगटा है, वह सर्वज्ञ पूर्णवीतराग इष्टदेव को नमस्कार करता है, किसी का नाम लेकर नहीं, गुण

वाचक है।

इस आध्यात्म ग्रंथ में `समयसार' कहने से इसमें इष्टदेव का समावेश हो गया। तथा एक ही नाम लेने में अन्यमतवादी मतपक्ष का विवाद करते हैं उन सब का निराकरण (**समयसार के विशेषणों से किया है**) (**हो गया**) एक ही नाम हो - ऐसा कुछ नहीं इसके जितने विशेषण हैं। हजारों लाखों अनंतों, एक निर्मल वीतरागसर्वज्ञ दशा को, अनंतगुणों के नाम से पहचान करा सकते है। आहाहा ! एक ही नाम का विवाद करता है, अतः सभी का निराकरण `समयसार' के विशेषणों का वर्णन करके किया (है) समयसार का विशेषण कहा ना कि स्वानुभूत्या चकासते, भावाय, चित्स्वभावाय अर्थात द्रव्य है, गुण है अनुभूति से जिसने आत्मा जाना है और अनुभूति द्वारा जिन्होंने सर्वज्ञपना प्रगट किया है, ऐसे विशेषणों द्वारा वर्णन करके किया (है)।

पुनश्च अन्यवादी जन अपने इष्ट देव का नाम लेते हैं उसमें इष्ट शब्द का अर्थ घटित नहीं होता, उसमें अनेक बाधायें और विरोध आते हैं, (**और स्याद्वादी जैनों को तो सर्वज्ञ वीतरागी शुद्धात्मा इष्ट है।**) स्याद्वाद की अपेक्षा यह स्वरूप जिस प्रकार है, चैतन्य का वास्तविक शक्ति स्वरूप और प्रगट स्वरूप जिस प्रकार है, उसे स्यादवादी कह सकते, आहाहा ! जैनों को तो सर्वथा वीतरागशुद्धात्मा ही इष्ट है `**सर्वथा**' प्रगट दशा ली है ना ? सर्वज्ञ वीतराग शुद्धात्मा ही इष्ट है, फिर चाहे इष्टदेव को परमात्मा कहो। यहाँ से शुरूआत की है। परमस्वरूप, परमस्वरूप जिसे प्रगट हो गया है, ऐसे परमात्मा कहो वस्तुतः तो परमात्मा ही हैं वस्तु अपेक्षा परमात्मा है परंतु व्यक्त प्रगटदशा में जिसकी परमात्मदशा हुयी है उसे परमात्मा कहते हैं ? आहाहा ! परमज्योति कहो, परम चैतन्यज्योति, चैतन्यप्रकाश की जलहल ज्योति, जिसे पूरण प्रगट हो गई है। `परमेश्वर' कहो परम ईश्वर, जो परमेश्वर स्वरूप तो परमेश्वर ही है। अपना परमेश्वर - ऐसा आया था न, अड़तीस गाथा में (अप्रतिबुद्ध) भूल गया था, यह परमेश्वर भूल गया था, उस परमेश्वर को याद करके, व्यक्त में (पर्याय में) प्रगट दशा में परमेश्वरपना (प्रगट) किया उन्हें परमेश्वर कहते हैं। `परमब्रह्म' कहते, परमब्रह्म परम आनंद जिसे परम आनंद प्रगट हुआ वह ब्रह्मस्वरूप है, आहाहा ! जिसकी दशा में पूरण अतीन्द्रिय आनंद प्रगट हुआ वह परमब्रह्म कहलाता है। `शिव' कहलाता है। उन्हें उपद्रव रहित पूरण कल्याण प्रगट हो गया है इसलिये `शिव' भी कहलाता उन्हें शिव कहते हैं। वह लोग शिव कहते हैं वह नहीं वह (यहाँ) समझ में आया ?

`शिव' नमोथ्थुणं में आता है। शिवमलय मरु, मणंत, `शिव' अर्थात् कल्याणमूर्ति कोई उपद्रव है नहीं, जिन्हें पूर्णानंद पर्याय प्रगट हो गई। उन्हें शिव भी कहते हैं।

वे `निरंजन' कहलाते हैं। **जिन्हें अंजन नहीं मैल नहीं निर्मलानंद जिनकी दशा प्रगट हुयी है** (**अतः**) **निरंजन कहलाते** (**हैं**) `निष्कलंक' कहलाते (हैं) भव और भव के भाव का कलंक जिन्हें नहीं - ऐसे निष्कलंक परमात्मा कहलाते (है)। आहाहा ! `अक्षय' कहलाते, हुये वे हुये नाश को प्राप्त होंगे नहीं अब पूर्णदशा प्राप्त हुयी, यह नष्ट नहीं होंगी, अब नष्ट नहीं होगी। पर्याय में पूर्णता हुयी वह भी नष्ट नहीं होगी। द्रव्य गुण का तो नाश नहीं। जिनकी पूर्णपर्याय प्रगट हो गई उसका नाश नहीं होगा। आहाहा ! अक्षय, अमेय, चारित्र पाहुड़ में तो पर्याय को अक्षय अमेय कहा है, साधक जीव की हो, क्योंकि प्रभु (ज्ञायक) स्वयं अक्षय अमेय है वस्तु अमेय अर्थात् जिसकी मर्यादा नहीं - ऐसा जिसका स्वभाव है और नष्ट किसी दिन होगा नहीं, ऐसे अक्षय अमेय को जिसने जाना और जिन्होंने स्थिरता प्रगट की इस स्थिरता को भी अक्षय अमेय कहा जाता है, पूरण हुये विना, आहाहा ! शक्ति अक्षय अमेय है, परन्तु पर्याय साधकरूप प्रगटी वह अक्षय अमेय है और पूर्ण प्रगटेगी वह तो अक्षय अमेय ही है आहाहा !

इसलिये उसे कहते हैं अक्षय, `अव्यय' नाश न हो किसी दिन, क्षय नहीं हो और व्यय (अर्थात) जिसका नाश न हो, हुयी जो दशा हुयी वह हुयी, आहाहा ! एक तरफ - ऐसा कहते हैं कि केवलज्ञान, संवर निर्जरा आदि पर्याय नाशवान है। यह पर्याय है इस (अपेक्षा) से, (३८ गाथा नियमसार) भगवान स्वयं अक्षय अविनाशी है, केवलज्ञान, केवलदर्शन अनंत आनंद जो पर्याय प्रगटी है उसकी एक समय की स्थिति है, इसलिये उसे वहाँ नाशवान कहा है। परंतु यहाँ तो वैसी की वैसी रहना है अतः उसे वहाँ अविनाशी अव्यय कहा है। आहाहा ! (वैसी की वैसी कायम रहनेवाली है) इस अपेक्षा से। है तो एक समय की पर्याय, पर्याय का स्वरूप ही एक समय की मर्यादा का है, इस अपेक्षा वह तो नाशवान है और दूसरे समय वैसी ही होगी और हमेशा वैसी की वैसी (होती) रहेगी, इस अपेक्षा अव्यय कहलाती है। आहाहा कितनी अपेक्षायें लागू होती हैं, अलौकिक वस्तु है।

`शुद्ध' है, यह पर्याय शुद्ध है, वस्तु, द्रव्य गुण तो शुद्ध है ही। वे सभी, परंतु यह जो इष्टदेव है व्यवहार से प्रीति करने लायक वह शुद्ध है। प्रत्येक पर्याय उनकी पवित्र प्रगट हो गई है `बुद्ध' है अकेली ज्ञान की पर्याय पूर्ण हो गई है, बुद्धति इति बुध; जाने... पूरा जानना जिसे प्रगट हो गया है, `बुद्ध' है `अविनाशी' है, नाश जिसका नहीं `अनुमप है' जिन्हें कोई उपमा नहीं, किसकी उपमा ? उसकी उपमा उन्हींको। आहाहा ! `अरूपी' है पर वस्तु है... इसलिये उसमें अनंत अनंत स्वभाव अपरिमित अमर्यादित भरा है, ऐसी पर्याय जब प्रगट होती है उसका क्या कहना। आहाहा ! वह तो अनुपम है उसे कोई उपमा दे सकते नहीं।

`अछेद्य है', `अभेद है' छेद सकते नहीं। यह उनकी पर्याय भी छेद सकते नहीं पर से। क्योंकि उसमें प्रभुत्व नाम का गुण है उस (प्रभुत्व) गुण की पर्याय के कारण पर्याय में भी प्रभुत्वपना आ गया है इसलिये वह स्वतंत्ररूप (है) और दूसरे से खण्डित न हो - ऐसा स्वभाव जिसका प्रगट हो गया है इसलिये उसे अछेद्य कहते हैं, अभेद्य है, खण्ड (टुकड़े) और बिखराव न हो। छेद अर्थात् टुकड़ा न हो छेद माने टुकड़ा न हो और भेद माने बिखराव न हो ऐसी अखण्ड ध्रुव पर्याय प्रगट हुयी है अंदर आहाहा ! ऐसी ही पर्याय का स्वरूप प्रगट है - ऐसा ही स्वरूप द्रव्य का है क्योंकि था, उसमें से आया। कहीं बाहर से आता नहीं। आहाहा ! अछेद्य अभेद।

`परमपुरुष उसे कहते' आहाहा ! प्रथम तो परमपुरुष तुम स्वयं परम पुरुष हो। आहा ! परमपुरुष पास में होने पर भी तुम परमपुरुष को देखने के लिये निवृत्ति लेता नहीं, परमपुरुष, प्रभु (ज्ञायक) परमपुरुष है, तुम्हारे पास में है, तुम्हारी एक समय की पर्याय के पास है, आहाहा ! उसे देखने, उसके अस्तित्व को जानने का प्रयत्न करते नहीं, और बाहर के प्रयत्न पुण्य और पाप में रुक कर परमपुरुष को भूल जाता है, यह तो परमपुरुष पर्याय में प्रगट हो गया आहाहा यह परमपुरुष है।

`निराबाध है' कोई इसे बाधा (नुकसान) करे - ऐसा है नहीं। आहाहा ! अब उनको भवभ्रमण हो कि किसी कर्म का उदय आये - ऐसा नहीं होता।

**`सिद्ध है'** यह पूरण सिद्ध परमात्मा `सत्यात्मा' सच्चा आत्मा है यह। आहाहाहा ! अभूतार्थ रागादिकवाला आत्मा तो अनात्मा है, वस्तु अपेक्षा आत्मा है, परंतु रागद्वेष पर्याय के कारण अनात्मा है। वह तो पर्याय अपेक्षा भी सत्यात्मा है। आहाहाहा ! वस्तु तो भूतार्थ है, सत्यार्थ है, परंतु पर्याय में भी सर्त्याथ हो गया, (जैसा) पूरण सत्य स्वरूप है वैसा प्रगट हो गया है। आहा !

`चिदानंद है'** चिद् अर्थात् ज्ञान और आनंद यह ज्ञान और आनंद जिसकी दशा है वह चिदानंद स्वरूप स्वयं है प्रभु इष्टदेव। एक ही नाम हो - ऐसा कुछ नहीं, ऐसे सभी चाहे जितने हजारों नाम हो परंतु उसमें हैं वह। **`सर्वज्ञ' है यह सर्वज्ञ है यह एक समय की पर्याय में तीनकाल तीनलोक जाने - ऐसा सर्वज्ञपना जगत में है, ***ऐसी प्रतीति करनेवाले को श्रद्धा अपेक्षा केवलज्ञान प्रगट होता है।*** क्या कहा यह ? जो सर्वज्ञपना अंदर है वह केवलज्ञान है - ऐसा मान्यता में नहीं था, श्रद्धा में भरोसा नहीं था। यह सर्वज्ञ स्वरूपी हूँ, पूरण स्वरूपी हूँ - ऐसी प्रतीति हुयी अनुभव में, वह सम्यग्दर्शन में केवलज्ञान है - ऐसा प्रगट हुआ। श्रद्धा अपेक्षा से प्रगटा, पर्याय में प्रगट होगा जब केवलज्ञान होगा तब, पहले समकित में श्रद्धा अपेक्षा केवलज्ञान प्रगट होता है। आहाहा ! अर्थात् पूरण स्वरूप ही आत्मा है सर्वज्ञ स्वरूपी ही है

यह ऐसी प्रतीति हुयी तब सर्वज्ञ और केवलज्ञान नहीं था - ऐसा जो माना था उसे केवलज्ञान है, सर्वज्ञ है - ऐसा प्रतीति में (आया) उसने केवलज्ञान माना (तो) प्रतीति अपेक्षा केवलज्ञान हुआ, केवलज्ञान हुआ। आहाहाहा !

`**वीतराग**' है पूरण वीतरागस्वरूप ही है, परंतु यह तो पर्याय में वीतराग है, आहाहा ! जिसे एक समय की दशा, अकषाय वीतरागरूप है... ऐसी जिसे प्रतीति हो उसे श्रद्धा अपेक्षा वीतरागदशा प्रगटी है कि मैं वीतराग हूँ। परंतु यहाँ तो पर्याय में प्रगट हो गई है वीतराग दशा। आहाहा ! अरूपी होने पर भी, इसमें रूप, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श का अभाव होने पर भी, उसके गुणों के स्वभाव में अरूपीपने के स्वभाव की कोई मर्यादा नहीं - ऐसा यह वीतराग है आहाहा ! जिसकी वीतराग शक्ति की भी मर्यादा नहीं। यह वीतराग पर्याय है, पर्याय में जिसे वीतरागता आयी वह अंदर वीतरागशक्तिरूप में अनंत स्वभाव है, उसमें से आयी है। वीतराग पर्याय आयी फिर भी शक्ति में तो अनंती वीतरागता, एक (एक) शक्ति में अनंती वीतरागता पड़ी है आहाहाहाहा ! उसकी जिसे प्रतीति और ज्ञान हुआ है उसे यह वीतराग है - ऐसी प्रतीति, अर्थात् वीतरागपना है - ऐसा श्रद्धा में प्रगटा। मैं जो रागी था पुण्यवाला था अल्पज्ञ और कषायवाला - ऐसा माना था, उसे अंदर में वीतरागस्वरूप, अकषाय स्वरूप - ऐसा जिसने अंर्तमुख होकर माना, जाना वह वीतरागपने की श्रद्धा प्रगट। हुयी मैं तो वीतरागी ही हूँ यह दशा उसे वीतरागपने की पर्याय में प्रगट होती है। आहाहा!

`**अर्हंत है**' उन्हें कुछ इसे जानना बाकी नहीं। अर्हंत है ना ? अरहंत नहीं लिया अर्हंत कुछ भी इन्हें जानना शेष नहीं। जिसका स्वभाव जानना है उनको नहीं जानना, यह किस प्रकार हो ? जानना उसे जानना जानना, जानना, जानना, जानना, जानना, जानना, जानना, जानना, अनंत, अनंत, अनंत, अनंत, अनंत, उन्हें जानना जानना ही होता है। नहीं जानना - यह बात उन्हें हो सके नहीं। आहाहाहा ! - ऐसा जिसे कुछ जानना शेष नहीं, पूरा रहस्य खिल गया है। - ऐसा आत्मा जगत में है इष्टदेव, उसे आत्मा इष्ट हुये बिना नहीं रहे। आहाहा ! पूरण अरहंत, पूरण दशा जिसे प्राप्त है, ऐसी जिसकी मौजूदगी जगत में है, जिसने उसे स्वीकारा कि, मेरा स्वभाव ही कुछ भी न जाने - ऐसा नहीं, पूरण जाने - ऐसा अरहंत स्वभाव है - ऐसी जिसे प्रतीति हुयी है, यह जीव ऐसे अरहंत को नमस्कार करता है आहाहाहा ! अन्य प्रकार कहें कि (यह) निश्चयपूर्वक का व्यवहार है।

यह इष्टदेव है - ऐसा प्रगट हुआ है। उसे यह इष्टदेव वंदनीक है। चाहे उनका नाम न ले कि भाई ऋषभदेव कि महावीर यह गुणवाचक हजारों नाम कहें तो भी उन्हें लागू होते है `**जिन है**' यह, आहाहाहा ! घट घट अंतर जिन बसे, यह शक्ति

रूप से जिन है। जिसे जिन की श्रद्धा हुयी, उन्हें जिनपना प्रगटा। कषायें प्रगट थी उसकी जगह जिनपना प्रगटा, उसे जिनकी पर्याय प्रगट होगी और (जिन्हें) है उन्हें यहाँ नमस्कार करते हैं। आहाहा ! वास्तव में तो इसको (आत्मा को) नमस्कार करते हैं, अर्थात् सभी तीन काल के जीव ऐसे हैं उन्हें, नमस्कार परंतु स्वयं का जीव भी जिन होनेवाला है, क्योंकि जिनस्वरूप की अनुभव और प्रतीति तो हुयी हैं मैं वीतराग हूँ। वह वीतराग नहीं था कषाय हूँ - ऐसा माना था तब उसे वीतरागपने की सत्ता का स्वीकार नहीं था। वीतरागपने की सत्ता का स्वीकार हुआ तब वीतराग हूँ - ऐसा प्रगटा। आहाहा ! और जिसे वर्तमान में पर्याय प्रगट हुयी है उसे नमस्कार करते हैं। आहाहा ! यह वास्तव में स्वयं को नमस्कार हुआ क्योंकि उसे जिनपना प्रगट होना है। आहाहाहाहा ! दूज हुयी उसे पूनम होना ही है, पूनम अर्थात पूरणता। पूनम पूरणता। इसप्रकार जिसने आप्त स्वरूप प्रभु - ऐसा जहां भान हुआ हैं और प्रगटा है आत्मा, आप्त प्रगटा है श्रद्धा में, वह पर्याय में प्रगटेगा उसे वर्तमान में नमस्कार करते हैं और मैं भी भविष्य में आप्त रूप में होऊँगा, अर्थात मैं भी स्वयं को नमस्कार करता हूँ। आहाहाहा ! आप्त मानने लायक, हित के लिये मानने लायक आप्त, आप्त स्वयं प्रभु आप्त ही है। परंतु पर्याय में जब ज्ञान हुआ तब वह पूरण आप्त है उसे नमस्कार करते हैं। पूरण हित का हितोपदेशी का आता है ना ? तीन बोल रत्नकरण्ड श्रावकाचार में हितोपदेषी.....

`**भगवान**' है। ठीक ! यह भगवान है - ऐसे भगवान हैं, भग अर्थात अनंत आनंद ज्ञान, लक्ष्मी जिसका स्वरूप है (वह) वैसे भगवान हैं। भग...वान... संस्कृत टीका में है, भग अर्थात् अनंतज्ञान और अनंतदर्शन जिसकी लक्ष्मी - ऐसा भग- ऐसा जिसका स्वरूप वान वह हैं। भगवान उसका रूप है, अतः स्वयं भगवान ही है। परंतु भगवान है - ऐसा जिसे स्वीकार हुआ सम्यग्दर्शन में, यह भगवान पर्याय जिसे प्रगट हुयी है उसे नमस्कार करते हैं। स्वभाव में तो है, और पर्याय में जिसका भरोसा, प्रतीति और अनुभव है, जिसे पूरणता हुयी, उसे नमस्कार करते हैं। आहाहा !

`**समयसार**' है उसका नाम ही समयसार है `**नमः समयसाराय** आया ना ? इत्यादि हजारों नामों से कहो, हजारों नामों से कहो, (गुणों से) - आहाहा ! वह पुण्यशाली है - ऐसा कहलाता (है) पुण्य नाम पवित्रता का हों। आहाहा ! वह पापी (कहलाय) प्रभु को, स्वयं (अतीन्द्रिय आनंद का) अनुभव करते हैं पीते हैं और दूसरों को पिलाते हैं (इस) अपेक्षा से पापी कहलाते हैं। निर्विकल्प अनुभव पीते हैं और दूसरों को निर्विकल्प अनुभव पीने की बात करते (हैं) पा..... पी..... वह बच्चे (लकड़ी लेकर) चलते (हुये) नहीं कहते कुछ क्या कहते (पा..... पा..... पगली) पा..... पा..... पगली। छोटा लड़का

हो और लकड़ी लेकर चले - ऐसा छोटा लड़का पा..... पा..... आहाहा ! - ऐसा यह पूर्ण प्रभु पूरण पर्याय को पीता है, अनुभव करता है और उनके द्वारा पूरण पर्याय के अनुभव का उपदेश आता है, इसे जिस प्रकार रुचे, वह शब्द उसे लागू हो इस प्रकार होना चाहिए..... आहाहा !'

यह सभी नाम कथंचित सत्यार्थ हैं। उस उस अपेक्षा सत्यार्थ हैं, कथंचित अर्थात इसप्रकार चिदानंद, सिद्ध, जिन आदि सर्वथा एकांतवादियों को भिन्न नामों में विरोध है, भिन्न-भिन्न नामों में विरोध आता है दूसरों को। यहाँ - ऐसा कुछ नहीं, यह प्रभु है इन्हें कर्त्ता कह सकते (हैं) भोक्ता कह सकते (हैं) - ऐसा सभी। परंतु कर्त्ता किसका ? अपने स्वभाव का, भोक्ता भी अपने स्वभाव का। षट्कारक है न शक्ति करता कर्म करण सभी है। परमात्मा में षट्कारक का परिणमन पर्याय में समय समय में अनंत गुणों का एक-एक पर्याय में षट्कारक का परिणमन परमात्मा को भी है। नया नया है ना ! पर्याय नयी नयी होती है ना ! एक एक पर्याय में, अनंतगुण की अनंती पर्याय, उसमें एक एक पर्याय में षट्गुण हानिवृद्धि (रूप) षट्कारक की प्रवृत्ति है। षट्गुण हानिवृद्धि। वह तो अगुरुलघुत्वगुण में थी एक एक पर्याय में षट्कारक की प्रवृत्ति है। कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। शक्ति है, परंतु पर्याय में (भी) उसकी प्रगटता है। पर्याय में भी एक एक समय में, सिद्ध की पर्याय में भी पर्याय कर्त्ता (पर्याय) कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान इस प्रकार परिणमन कर रहे हैं। आहाहा ! गंभीर है... परमात्म स्वरूप... अरूपी है परंतु पदार्थ है ना ! अस्ति है ना ! यह ही सर्वोत्कृष्ट है।

रूपी हो बड़ा स्कंध रजकणों का पूरा अचेतन स्कंध वह रूपी है। उसकी अपेक्षा यह पदार्थ अरूपी है, महान है, महान सर्वोत्कृष्ट यह पदार्थ है। वह स्वयं जाने अपने को और दूसरों को, परंतु उसे छुये बिना अपने स्वभाव के सामर्थ से जाने - ऐसा सर्वोत्कृष्ट पदार्थ प्रभु स्वयं आत्मा है। जिसे प्रगट दशा (पूर्ण) हो गई वह तो परमात्मा है। उसे यहाँ नमस्कार करते हैं। इसलिये अर्थ यथार्थ समझना चाहिए।

अब इसका संक्षिप्त हिन्दी किया।

प्रगटै निज अनुभव करै सत्ता चेतनरूप।
सब ज्ञाता लखिके नमौं। समयसार सण भूप।।१।।

`प्रगटै निज अनुभव' यहाँ पर्याय की प्रगट दशा की बात ली है। जिसे यह दशा प्रगट हुयी है सर्वज्ञ वीतराग आदि की, निज अनुभव करे वह अपना अनुभव करता है। आया है ना, **स्वानुभूत्या चकासते** सत्ता भाव (गुण) रूप है और चैतन्य स्वभाव अर्थात् चेतनरूप है `भावाय' चित्स्वभावाय, स्वानुभूत्या चकासते यह गर्भित किया

इसमें। प्रगटै निज अनुभव करे अपने आनंद को प्रगट करके अनुभव करे। सत्ता है अस्तित्ववाली वस्तु है, चेतनरूप स्वभाव उसका चेतनभाव है `भावाय' चित्त स्वभावाय, स्वानुभूत्या चकासते यह मिला दिया इसमें प्रगटे निज अनुभव करे अपने आनंद के अनुभव को प्रगट करके अनुभव करते। अस्तित्व है, टिकनेवाली वस्तु है चेतन रूप उसका स्वभाव चेतन है भाव, इस भाववान का भाव और चेतनरूप इसका स्वभाव। आहाहाहा ! **`प्रगटे निज अनुभव करे सत्ता चेतन रूप'** आहाहाहाहा ! वाह ! पुराने पंडित भी, पाठ में अनुकूल हों वह शब्द लिखे हैं। चित्स्वभावाय, भावाय भावाय का अर्थ सत्ता किया, चित्स्वभाव का अर्थ चेतनरूप किया और स्वानुभूत्या का अर्थ निज अनुभव किया। **`सो ज्ञाता लखिके नमौं'** वह ज्ञाता हो गयी, अवस्था पूरण हो गई। सर्वज्ञपद सर्वजान कर, लखीने अर्थात जानकर। देखा ! ऐसे भगवान को जान कर देखा... जानकर अनुभव कर, मैं जाननेवाला आत्मा - ऐसा अनुभव करके नमस्कार करता हूँ। आहाहा ! उसे मैं नमस्कार करता हूँ। समयसार सहु भूप... यह समयसार बड़ा बादशाह है भूप है, आत्मा राजा है (चेतनराजा) समयसार बड़ा बादशाह, राजा महाराजा, समयसार महाराजा है पूरणदशा जिसकी प्रगट होगई, राजते शोभते इति राजा। १७-१८ गाथा में आता है। जीवराया। ऐसे राजते शोभते अपनी अनंती शांति आनंद से शोभायमान हो, वह राजा। वह महाराजा बादशाह राजा स्वयं है। स्वयं स्वयं का बादशाह और स्वयं भूप (राजा)। आहाहा !

अब दूसरे श्लोक में सरस्वती को... क्या कहते हैं ? पहले श्लोक में देव को नमस्कार किया पद्धति ऐसी है ना ? देव-शास्त्र-गुरु तीन - ऐसा आता है ना ? तो पहले देव को नमस्कार किया अब दूसरा शास्त्र को करते हैं बाद में तीसरा गुरु को नहीं करते (क्योंकि) गुरु स्वयं है अमृतचन्द्राचार्य अर्थात् टीका करनेवाला मैं हूँ - ऐसा कहकर... आहाहा !

श्लोक-२

(अनुष्टुभ्)

अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यंती प्रत्यागात्मनः।
अनेकांतमयी मूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम्।।२।।

अब सरस्वती को नमस्कार करते हैं -

श्लोकार्थ :- [अनेकान्तमयी मूर्तिः] जिसमें अनेक अन्त (धर्म) हैं ऐसे जो ज्ञान तथा वचन उसमयी मूर्ति [नित्यम् एव] सदा ही [प्रकाशताम्] प्रकाशरूप हो। [अनंतधर्मणः प्रत्यागात्मनः तत्त्वं] जो अनन्त धर्मोवाला है और परद्रव्यों से तथा परद्रव्यों

के गुण-पर्यायों से भिन्न एवं परद्रव्य के निमित्त से होनेवाले अपने विकारों से कथंचित् भिन्न एकाकार है, ऐसे आत्मा के तत्त्व को अर्थात् असाधारण, सजातीय विजातीय द्रव्यों से विलक्षण-निजस्वरूप को [पश्यन्ति] वह मूर्ति अवलोकन करती है।

भावार्थ :- यहाँ सरस्वती की मूर्ति को आशीर्वचनरूप से नमस्कार किया है। लौकिक में जो सरस्वती की मूर्ति प्रसिद्ध है वह यथार्थ नहीं है, इसलिये यहाँ उसका यथार्थ वर्णन किया है। सम्यग्ज्ञान ही सरस्वती की सत्यार्थ मूर्ति है। उसमें भी सम्पूर्ण ज्ञान तो केवलज्ञान है, जिसमें समस्त पदार्थ प्रत्यक्ष भासित होते हैं। वह अनन्त धर्म सहित आत्मतत्त्व को प्रत्यक्ष देखता है, इसलिये वह सरस्वतीकी मूर्ति है, और उसीके अनुसार जो श्रुतज्ञान है वह आत्मतत्त्व को परोक्ष देखता है इसलिये वह भी सरस्वती की मूर्ति है और द्रव्यश्रुत वचनरूप है, वह भी उसकी मूर्ति है, क्योंकि वह वचनों के द्वारा अनेक धर्मवाले आत्मा को बतलाती है। इसप्रकार समस्त पदार्थों के तत्त्व को बतानेवाली ज्ञानरूप तथा वचनरूप अनेकांतमयी सरस्वतीकी मूर्ति है; इसीलिये सरस्वती के वाणी, भारती, शारदा, वाग्देवी इत्यादि बहुत से नाम कहे जाते हैं। यह सरस्वती की मूर्ति अनन्तधर्मों को `स्यात्' पद से एक धर्मी में अविरोधरूप से साधती है, इसलिये सत्यार्थ है। कितने ही अन्यवादीजन सरस्वती की मूर्ति को अन्यथा (प्रकारान्तर से) स्थापित करते हैं, किन्तु वह पदार्थ को सत्यार्थ कहनेवाली नहीं है।

यहाँ कोई प्रश्न करता है कि आत्मा को अनन्तधर्मवाला कहा है, सो उसमें वे अनन्त धर्म कौन कौनसे हैं ? उसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि - वस्तु में अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तिकत्व, अमूर्तिकत्व इत्यादि (धर्म) तो गुण हैं; और उन गुणों का तीनों काल में समय-समयवर्ती परिणमन होना पर्याय है, जो कि अनन्त हैं और वस्तु में एकत्व, अनेकत्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, भेदत्व, अभेदत्व, शुद्धत्व, अशुद्धत्व आदि अनेक धर्म हैं। वे सामान्यरूप धर्म तो वचनगोचर हैं, किन्तु अन्य विशेषरूप अनन्त धर्म भी हैं जो कि वचन के विषय नहीं हैं, किन्तु वे ज्ञानगम्य हैं। आत्मा भी वस्तु है, इसलिये उसमें भी अपने अनन्त धर्म हैं।

आत्मा के अनन्त धर्मों में चेतनत्व असाधारण धर्म है वह अन्य अचेतन द्रव्यों में नहीं है। सजातीय जीवद्रव्य अनन्त हैं, उनमें भी यद्यपि चेतनत्व है तथापि सबका चेतनत्व निजस्वरूप से भिन्न भिन्न कहा है, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य के प्रदेशभेद होने से वह किसी का किसी में नहीं मिलता। वह चेतनत्व अपने अनन्त धर्मों में व्यापक है, इसलिये उसे आत्मा का तत्त्व कहा है, उसे यह सरस्वती की मूर्ति देखती है, और दिखाती है। इसप्रकार इसके द्वारा सर्व प्राणियों का कल्याण होता है, इसलिये `सदा प्रकाशरूप रहो' इसप्रकार इसके प्रति आशीर्वादरूप वचन कहा है।।२।।

श्लोक-२ पर प्रवचन

अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यंती प्रत्यागात्मनः।
अनेकांतमयी मूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम्।।२।।

अनेकान्तमय मूर्ति, जिसमें अनेक धर्म (गुण) हैं - - ऐसा ज्ञान और वचन दोनों, वाचक और वाच्य, वाचक ऐसी वाणी वह भी सरस्वती कहलाती है, और उसका वाच्य - ऐसा जो ज्ञान, वो भी सरस्वती कहलाती है। आहाहा ! जिसमें अनेक धर्म हैं - - ऐसा जो ज्ञान और वाणी ज्ञान में भी अनेक धर्मों का स्वभाव है और वाणी में भी अनेक स्वभाव हैं। आहाहाहा ! सर्वज्ञ का अनुसरण करनेवाली वाणी... इसलिये आगे अनुभवशील कहेंगें ! आहाहा ! समझ में आया ? (बराबर) पश्यंती का अर्थ करेंगे और यह मूर्ति अवलोकन करती है, देखती है। यह इसमें नहीं, उसमें आया है कलशटीका में आता है कलश टीका में आता है। अनुभवशील, अनुभवशील - ऐसा अर्थ किया इसका वहाँ कलश टीका में, सर्वज्ञ की अनुसरण करनेवाली है यह इसमें (पास रखी हुयी जिनवाणी की तरफ इशारा करते हुये) यह कलशटीका है ना ? देखो पश्यंती का अर्थ किया, यहाँ पश्यंती का अर्थ मूर्तिमान अवलोकन किया है - कलशटीका में पश्यंती का अर्थ। अनुभवशील अनुभवशील अर्थात ? आहाहा ! यह वाणी सर्वज्ञ स्वरूप का अनुसरण करनेवाली है। अनुभवशील का अर्थ किया (है) सर्वज्ञ का अनुसरण करनेवाली है, अनुसरण करने में सर्वज्ञ निमित्त हैं। अनुसरण करके... है इसमें अनुभवशील... सर्वज्ञ का अनुसरण करनेवाली वाणी है इसलिये अनुभवशील कहा। पश्यंती का अर्थ यह किया। आहाहा!

ऐसी टीका ! पश्यंती का अर्थ अब इसमें क्या किया होगा ? जगमोहनलालजी ने उन्होंने तो - ऐसा लिखा है। `पहले यहाँ (सोनगढ़ में) जब विद्वत् परिषद इकट्ठी हुयी थी और हम सुनने आये तब कानजीस्वामी के पास से मुझे अध्यात्म की रुचि पलटी - ऐसा लिखा है। परंतु उस समय क्रमबद्ध को अस्वीकार करते थे, क्रमबद्ध (को) स्वीकार नहीं करते थे।' - ऐसा लिखा है इसमें (अध्यात्म अमृतकलश) कल पुस्तक आयी है न, उसमें। क्रमबद्ध को न माने तो वस्तु की व्यवस्था ही रहती नहीं। केवलज्ञान तो एक तरफ रहा। केवलज्ञान है उसके अनुसार होता है। परंतु वस्तु है, उसकी पर्याय इसप्रकार एक के बाद एक के बाद एक इस प्रकार होती यह वस्तु की व्यवस्था है। जैसे वस्तु में गुण एक के बाद एक (है), उनमें क्रम

नहीं, एक साथ में हैं इसप्रकार तिरछे साथ में है (हाथ से इशारा करते हुये) ऐसे आयत में साथमें है (इसीप्रकार) लम्बाई में आगे पीछे... यह प्रश्न ही नहीं होता, एक के बाद एक, एक के बाद एक। छहों द्रव्य की पर्याय क्रमसर, क्रमबद्ध चलती हैं ऐसी तो वस्तु की व्यवस्था है। उस समय अस्वीकार करते (विद्वत्परिषद के समय) परंतु अब स्वीकृत लगता है। इतना पढ़ा, वह (क्रमबद्धपर्याय) पुस्तक आयी है ना ? उसमें यही (विषय है) !

यहाँ कहते हैं अनेकांतमय वाणी आहाहा ! परंतु जिसमें अनेक स्वभाव हैं, स्वपर को कहने की शक्ति वाणी में स्वतः है और ज्ञान में स्वपर को जानने की शक्ति स्वतः है अर्थात ज्ञान और वाणी में अनेक धर्म कहने में आये हैं इसलिये उन्होंने अनेकांत धर्म हैं - ऐसा कहा। ज्ञान में अनेक धर्म हैं, - स्वभाव, और वाणीमें अनेक स्वभाव, स्वपर कहने को शक्ति, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी और अनंत आनंद को कहने की शक्ति तो वाणी में वाणी के कारण है तथा यह सर्वज्ञ है इसलिये वाणी में कहने की ताकत आयी - ऐसा नहीं। आहाहा ! सर्वज्ञ है वह तो निमित्त हैं, निमित्त से दूसरे में कुछ होता नहीं, यह वाणी में ही सर्वज्ञ, सर्वदर्शी अनंत आनंद आदि वाणी में कहने की शक्ति, वाणी के कारण स्वयं सिद्ध अपने कारण है यहाँ सर्वज्ञ है, इसलिये वाणी में सर्वज्ञपने को कहने की शक्ति आई, वाणी में - ऐसा नहीं। भले एक साथ हो परंतु उससे यहां है - ऐसा नहीं, इसलिये अनेकांतमयी मूर्ति दोनों को कहकर ! दोनों स्वतंत्र है ना, ज्ञान और वाणी दोनों स्वतंत्र है, आहाहा अनंतगुण और अनंती पर्यायें स्वयं स्वतंत्र अनंत धर्म स्वभाववाली और उसे कहनेवाली वाणी, है तो चैतन्य के स्वरूप से विरुद्ध वाणी, कारण कि आत्मा चेतन है वाणी अचेतन है। आहाहा !

परंतु उस वाणी में भी अनंत स्वभाव, धर्म अपने से स्वयं से रहे हुये हैं। आहाहाहाहा ! यह वाणी स्वयं ही सर्वज्ञ और सर्वदर्शी अनंत आनंद ऐसे आत्मपदार्थ को अपने स्वभाव से ही कथन करती है, यहाँ (सर्वज्ञ) है इसलिये कथन करती (है) - ऐसा नहीं है। समझ में आया ? अंदर स्वतंत्रता है ना ? आहाहाहा ! अपूर्व बात है। आहाहा ! वीतराग के अलावा ऐसी बात कहाँ है। एक एक परमाणु में षट्कारक शक्ति मौजूद है, एक एक परमाणु में कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण छह गुण हैं, इसलिये उसकी पर्याय में षट्गुणों का परिणमन अपने से स्वतः होता है। यह वाणी - ऐसा कहे कि सर्वज्ञ है जगत में, तो यह सर्वज्ञ है उसे अनुसरण करके... भले वाणी कही परंतु सर्वज्ञ का निमित्त है अतः वाणी में सर्वज्ञ हैं - ऐसा आया - ऐसा नहीं। उस वाणी में जो अनंत धर्म, जाती है रही हैं आहाहा ! एक एक परमाणु

में अनंतगुण आकाश के प्रदेश की संख्या से भी अनंत गुणे गुण हैं, आकाश के प्रदेश हैं जिनका अंत नहीं, उसके जो प्रदेशों की संख्या उससे अनंत गुने गुण एक जीव में हैं और इतने ही चैतन्य मात्र (में) नहीं परंतु अचेतन रूपी परमाणु में भी इतने ही अनंत गुण हैं आहाहा ! दोनों स्वतः है। किसी के कारण कोई नहीं, आहाहाहा ! - ऐसा जो ज्ञान और वचन उसमय मूर्ति, मूर्ति अर्थात स्वरूप, आत्मा का ज्ञान स्वरूप, वाणी का शब्द स्वरूप, मूर्ति अर्थात स्वरूप।

`**सदा ही प्रकाशरूप हो**' आहाहा ! अनेकांत धर्मस्वभाव - ऐसा आत्मा ज्ञानमय सदा प्रकाशमान रहो, और उसकी वाणी कहनेवाली (भी) आहाहा ! ***तीनों कालों में तीनों कालों को जाननेवाले का विरह नहीं होता। तीनों कालों में तीनों कालों को जाननेवाले का किसी काल में विरह नहीं होता। तो तीनकाल में तीनकाल को जाननेवालों की वाणी जो है, वह भी पूरी, उसका विरह नहीं होता जगत में।*** आहाहाहाहा ! यह वाणी भी स्वतंत्र है उस वाणी में अपने अनंत धर्म हैं, वाणी ने स्वयं अपने धर्मों को धारण कर रखा है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के धर्मों को छूते नहीं। यह तीसरी गाथा समयसार। प्रत्येक द्रव्य, चाहे तो परमाणु हो कि चेतन हो अपने गुण पर्याय को चूमते हैं परंतु अन्य द्रव्य के गुण पर्याय को कोई द्रव्य पर्याय छूते नहीं, चूमते-अडते नहीं, आहाहाहा ! वाणी निकली यह सर्वज्ञ पर्याय को छूती नहीं और सर्वज्ञ पर्याय वाणी को चूमती नहीं, छूती नहीं। आहाहा ! फिर भी सभी का (स्वभाव) स्वयंसिद्ध अनंत धर्मस्वरूप है। अनेकांतमयी मूर्ति आहाहाहा ! वीतरागवाणी का - ऐसा स्वरूप।

सदा प्रकाशरूप रहो। सर्वज्ञपना और अनंतगुण सदा प्रगट रहो, और उसको कहनेवाली वाणी भी सदा विद्यमान रहो। आहाहा ! मुनि स्वयं हैं, अमृतचन्द्र आचार्य संत हैं, छठवें सातवें (गुणस्थान में) झूलते हैं, तीन कषाय का अभाव है और आत्मा में लीन हैं, राग आता है उसमें लीन नहीं। यह टीका करते हैं। उसका विकल्प आता है, उसमें लीन नहीं, उससे भिन्न रह कर राग को छुये बिना ज्ञान में (लीन हैं) ज्ञान में, स्वपर प्रकाशक ज्ञान स्वतः होता है, राग है इसलिये राग का ज्ञान होता है - ऐसा नहीं - ऐसा तो इसका स्वभाव है आहाहा ! और वाणी का - ऐसा स्वभाव है आहाहा ! ***भले उसे सर्वज्ञ अनुसारणी कहो, पर यह तो निमित्त से कथन है सर्वज्ञ है उसका अनुसरण करके वाणी आती है, अल्पज्ञ प्राणियों को जैसी वाणी होती (है) वैसी सर्वज्ञ को नहीं होती इतना है।*** पंरतु वाणी आती है वह स्वतः सिद्ध स्वयं से आती है आहाहा ! ऐसी स्वतंत्रता।।

`**कैसी है वह मूर्ति ? कैसा है स्वरूप उसका ? अनंत धर्मणः प्रत्यगात्मनः तत्त्व**' जो अनंत धर्मवाला है और जो **परद्रव्य से तथा परद्रव्य के गुणपर्यायों से भिन्न तथा**

परद्रव्य के निमित्त से अपने विकारों से कथंचित भिन्न आत्मा की बात की कैसा है प्रभु ? कि अनंत धर्मवाला अनंत जिसके धर्म अर्थात गुण और पर्याय को धारण किया है, धर्म अर्थात गुण और पर्याय को धारण किया है।

और जो परद्रव्यों से, परद्रव्य से बिलकुल भिन्न है प्रभु (आत्मा), उसीप्रकार पर-द्रव्य के गुण पर्याय से बिलकुल भिन्न है वह वाणी के गुणपर्याय से भी प्रभु भिन्न है। आहाहाहाहा ! **और परद्रव्य के निमित्त से होनेवाले अपने विकारों से कथंचित भिन्न** अर्थात् हुए तो हैं इसकी पर्याय में, फिर भी उसका जाननेवाला रहता है। अस्तित्व पर्याय में है फिर भी उसका जाननेवाला अर्थात् कथंचित भिन्न और कथंचित अभिन्न..... पर्याय में है, इस अपेक्षा अभिन्न कहलाता (है) और उसके स्वरूप में, ज्ञान में यह नहीं (हैं), राग हो, उसे जाननेवाला जानता है, इसलिये इसमें नहीं - ऐसा कथंचित् भिन्न `एकाकार' है आहाहाहा !

भगवान आनंद स्वरूप प्रभु एक स्वरूप है `एकाकार' अर्थात एक स्वरूप में है अपने द्रव्य गुण पर्याय से एक स्वरूप में है पर द्रव्य के गुण पर्याय से भिन्न है। आहाहाहा ! और पर द्रव्य के निमित्त से होनेवाले अपनी पर्याय से कथंचित भिन्न है अभिन्न है, है इस अपेक्षा अभिन्न है, परंतु स्वरूप में गुण में नहीं इसलिये भिन्न है।

- ऐसा यह आत्मतत्त्व को... आहाहाहा ! ऐसे आत्मतत्त्व को असाधारण सजातीय, विजातीय द्रव्यों से विलक्षण, क्या कहा ? - ऐसा आत्मतत्त्व है असाधारण कि अपने जैसी सजातीय अनंत आत्मामें हैं, है ? यह उनसे भी विलक्षण है। जो इस आत्मा के गुण हैं वह दूसरे में नहीं, यह दूसरों के गुण आत्मा में हैं - ऐसा नहीं है। अतः दूसरे आत्मा के गुणों से इस आत्मा के गुण विलक्षण हैं। आहाहाहाहा ! व्यक्ति मध्यस्थ से शांति से पढ़े विचारे तो उसे वस्तु हाथ में आये। परंतु अपनी मानी हुयी बात से वस्तु (हाथ नहीं आये) यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ ! प्रभु का विरह हुआ परंतु उनकी वाणी रह गई उसमें यह वस्तु स्थिति ! उसमें से उसका अर्थ समझने को, बहुत मध्यस्थता चाहिए। कोई पक्षपात में रह कर वाणी का अर्थ करे-ऐसा नहीं चले। आहाहा !

असाधारण सजातीय अर्थात (अन्य) आत्मा, उससे विलक्षण है, (अर्थात) यह सर्वज्ञ आदि आत्मायें है दूसरी, अन्य आत्मा और दूसरे सर्वज्ञ इनसे भी वह विलक्षण है कारण कि (उनका) जो ज्ञान है (वह) यहाँ नहीं और यह (मति श्रुत) ज्ञान है वह वहाँ नहीं। विलक्षण कहा। सजातीय आत्मायें से भी एक आत्मा का लक्षण विलक्षण (भिन्न) है।

`**विजातीय**' आत्मा के अलावा पांच द्रव्य-धर्मास्ति अधर्मास्ति आकाश और काल

(तथा पुद्गल) ऐसे द्रव्यों से विलक्षण निज स्वरूप को वह मूर्ति अर्थात वाणी अवलोकन करे अर्थात देखती है।

ज्ञान और आनंद की यह दशा देखती है और वाणी उसे कहती है - ऐसा लेना वहाँ, पश्यंती का अर्थ, वहाँ सर्वज्ञ अनुसारणी वाणी को कहा है कलशटीका में। यहाँ भी स्वयं अपने ज्ञान आनंद आदि समस्त गुणों को जानता है, और वाणी भी पूरण स्वरूप को कहती है, दिखाती है, वाणी भी पूरण स्वरूप को दिखाती है - ऐसा इसका अर्थ है।

विशेष कहने में आयेगा... (प्रमाण वचन गुरुदेव !)